चला संत सत्पंथ

कल्याणमित्र प्रमुख विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का (पूज्य गुरुजी)

30 जनवरी, 1924 **29 सितंबर, 2013**

प्रज्ञा पुरुष श्री गोयन्काजी का जन्म बर्मा के मांडले नगर में हुआ। उनके पूर्वज मूलत: चूरू (राजस्थान) के थे। अभी भी हवेली वहां है। वे प्रतिभाशाली छात्र थे और दसवीं कक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त कर स्वर्णपदक से सम्मानित हुए थे। पारिवारिक जिम्मेदारियों और व्यवसाय में रूचि होने से आगे की शिक्षा छोड़ दी। 1942 में विवाह हुआ और बर्मा पर जापानी हमला होने के कारण भारत आना पड़ा। चूरू में हिंदी विद्यापीठ से विशारद की परीक्षा पास की। महायुद्ध के बाद वे परिवारजनों के साथ वापिस रंगून लौट गये। अपने व्यवसाय के साथ अनेक सामाजिक संस्थाओं की सेवा की और खूब धन, यश अर्जित किया। फलस्वरूप, अहंजन्य मानसिक तनाव से ग्रस्त रहने लगे और माइग्रेन जैसी लाइलाज बीमारी के शिकार हो गये। कई देशों के विशेषज्ञों से इलाज कराने पर भी रोग बढ़ता ही गया।

1955 में सब तरफ से हारकर अपने बर्मी हितेषी की सलाह पर वे वहां के विपश्यनाचार्य सयाजी ऊ बा खिन द्वारा संचालित विपश्यना शिविर में भाग लेने गये। इस शिविर के बाद अपने रोग से मुक्त हुए और इसमें पारंगत होने के लिए 14 वर्ष तक अपने गुरु के चरणों की शरण ग्रहण की। सयाजी ऊ बा खिन के मन में भारत के प्रति असीम कृतज्ञता का भाव था क्योंकि 'विपश्यना' भारत से ही बर्मा गई थी। वहां यह अपने परिशुद्ध रूप में जीवित रही पर भारत में सर्वथा लुप्त हो गई थी। वे चाहते थे कि यह लोककल्याणी साधना विधि अपने उद्गम भारत पुन: लौटे और भारतवासियों का कल्याण सधे। 1969 में उन्होंने अपने धर्मपुत्र गोयन्काजी को अपने धर्मदूत के रूप में भारत भेजा। यद्यपि उस समय भारत में विपश्यना का नाम भी शब्दकोष में नहीं था पर जुलाई 1969 में मुंबई की पंचायतीवाड़ी में लगा प्रथम शिविर विपश्यना के बीज रूप में सफल रहा। इसका आशुफल गुण लोकप्रिय होने लगा। शिविरों की मांग आने लगी। उन दिनों स्थाई केंद्र नहीं थे अत: मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों, बौद्ध विहारों, विद्यालयों, धर्मशालाओं, उपाश्रयों, तंबुओं आदि में शिविर लगते थे। कल्पना की जा सकती है कि किन–किन विकट–विषम परिस्थितियों में गोयन्काजी ने विपश्यना को जन–जन तक पहुँचाने का अथक अनवरत कार्य किया। धर्मसंगिनी श्रीमती इलायचीदेवी ने इस धर्मयज्ञ में सतत साथ दिया। उन्होंने विपश्यना का ऐतिहासिक पहिला कारागृहीय शिविर जयपुर सेंट्रल जेल में सितंबर 1975 में लिया। यद्यपि इसमें धर्मबल ही प्रधान था पर राज्य के तत्कालीन गृह सचिव श्री रामसिंहजी के प्रयासों से ही जेल के कड़े प्रतिबंधों में ढील संभव हुई। बंदियों को प्राप्त लाभ पर वैज्ञानिक अनुसंधान हुआ और कालांतर में अप्रेल 1994 में दिल्ली की तिहाड़ जेल में बृहद् शिविर आयोजन हुआ। भारत और विश्व के अन्य देशों की प्रमुख जेलों में भी यह परीक्षण होते रहे।

भारत ही नहीं पर यहां से बाहर भी बुद्धानुयायी देशों के अतिरिक्त दुबई, ओमान, बहरीन, कजाकिस्तान, पाकिस्तान, तुर्की, ईरान, बांगलादेश, मलेशिया आदि जैसे मुस्लिम देशों, इजराइल जैसे यहूदी देश तथा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलेंड जैसे ईसाईप्रधान देशों में विपश्यना के शिविर लगते रहते हैं। सचमुच विपश्यना का डंका बज चुका है। अभी 200 से अधिक केंद्रों में वर्षपर्यंत नि:शुल्क शिविर लगते रहते हैं। व्यापक मांग को पूरा करने के लिये श्री गोयन्काजी के 500 से अधिक प्रशिक्षित सहायक आचार्य हैं जो अर्हनिश नि:स्वार्थ अवैतनिक सेवा देते हैं।

विपश्यना के द्रुत विकास का कारण इसकी संप्रदाय निरपेक्षता, कर्मकांडविहीनता, आडंबरमुक्तता है। यहां कोई गुरु नहीं, कोई शोषण नहीं। साधक पूर्णतया स्वाधीन है, स्वतंत्र है– कोई बंधन नहीं। यदि कोई विपश्यना के अभ्यास से लाभान्वित हो तो जीवनभर के लिए अपनाए अन्यथा भले छोड़ दे। शिविरों में भिन्न–भिन्न दर्शन धाराओं, मान्यताओं, सांप्रदायिक बंधनों से

जकड़े लोग आते हैं। युवा-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित, अमीर-गरीब, भारतीय-विदेशी, पुरुष-नारी, गृहस्थ-सन्यासी नि:संकोच आते हैं और अपने आपको बंधनमुक्त महसूस करते हैं। यही तो शुद्ध धर्म है, और इसी को भगवान बुद्ध तथा उनकी परंपरा के आचार्यों ने अक्षुण्ण बनाये रखा है। इसी पर पूज्य गुरुजी ने जीवनपर्यंत बल दिया और भविष्य में भी ऐसा ही रखने के निर्देश देते रहे।

यह विद्या पूर्णतया वैज्ञानिक है। किसी मान्यता-दर्शन से विरोधाभास अथवा टकराव नहीं। आदरणीय श्री कृष्णमूर्तिजी और गोयन्काजी के वार्तालाप में इस विद्या को उन्होंने गुरुडम और शोषणविहीन माना और इसे अपनी मान्यता से मेल खाता हुआ पाया। जगतगुरु शंकराचार्य श्रद्धेय श्री जयेंद्र सरस्वतीजी ने नवंबर 1999 में व्यक्त किया कि बुद्ध शिक्षा पर आधारित विपश्यना तथा वैदिक परंपरा को समान आदर और गौरव का भाव दिया जाय एवं दोनों परंपराओं में स्नेहपूर्ण वातावरण स्थापित रहे। उनकी एक संयुक्त प्रेस विज्ञप्ति भी प्रकाशित हुई।

गोयन्काजी ने विश्व के अनेक देशों की धर्म यात्रायें की और वहां शिविर भी लिए। वे वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम, स्विट्जरलैंड और संयुक्त राष्ट्र विश्व शांति शिखर सम्मेलन में भी आमंत्रित किये गये थे। जीवन के अंतिम चार दशक से अधिक समय तक विपश्यना के प्रचार-प्रसार में लगाकर असीम उपकार करते रहे।

गोयन्काजी परियत्ति (सैद्धांतिक पक्ष) और पटिपत्ति (व्यावहारिक पक्ष) दोनों को समान महत्व देते थे, यद्यपि साधक को लक्ष्य प्राप्ति में पटिपत्ति ही सफलता प्रदायक होती है। वे एक उच्च श्रेणी के लेखक और कवि थे। उनका साहित्य हमारे लिए अमूल्य निधि है, सच्चा मार्गदर्शी है। विपश्यना संबंधी उनके प्रवचनों की सीडी, डीवीडी उपलब्ध है और टेलीविजन पर अनेक चैनल उनका प्रसारण करते हैं जो लोकप्रिय और प्रेरणादायक है। विपुल पालि साहित्य को विश्व की सात प्रमुख लिपियों देवनागरी, रोमन, बर्मी, थाई, श्रीलंकन, कंबोडियन और मंगोल में निवेशित किया गया है। बुद्धवाणी (तिपिटक) पर उनका अनुसंधान और पुन: प्रकाशन विश्व को उनकी अनमोल देन है।

उन्हें अनेक प्रशस्तियों से अलंकृत किया गया यथा- (1) बर्मा की पूर्व सिविल सरकार ने उत्कृष्ट समाजसेवा के लिए **वर्णकीर्ति** (2) अखिल भारतीय भिक्षु संघ ने **धर्म मूर्ति** (3) म्यंमा की वर्तमान सरकार ने **महासद्धम्मज्योतिर्धज** (4) नालन्दा महाविहार ने **विद्यावारिधि** (5) सारनाथ तिब्बतन रिसर्च इंस्टीट्यूट ने **विद्यावाग्पति** (6) महाबोधि सोसायटी ऑफ इंडिया ने **विपस्सनागमचक्कवत्ती** (7) श्रीलंका सरकार ने **जिन सासन सोभन पटिपत्तिधज** (8) श्रीलंका भिक्षु महासंघ नायकों की सर्वोच्च संस्था ने **परियत्ति विसारद** (9) भारत सरकार ने **पद्मविभूषण** आदि-आदि।

गोयन्काजी म्यमां (बर्मा) के प्रति असीम कृतज्ञता का भाव रखते थे। इसी की अभिव्यक्ति स्वरूप 100 करोड़ से अधिक की लागत का 315 फुट ऊंचा विश्व का सर्वोच्च सार्वजनिक विपश्यना स्तूप मुंबई में स्थापित हुआ जिसमें लगभग 10000 साधक बैठकर ध्यान कर सकते हैं। बुद्धजीवन से संबंधित कला दीर्घा व अन्य अलंकरण कार्यों से यह भारत का दर्शनीय धर्मस्थल बन गया है। इसके परिसर में एक विपश्यना केंद्र भी स्थापित किया गया है। स्थापत्य का यह बेजोड़ प्रतिष्ठान युगों-युगों तक बुद्ध की शिक्षा के साथ पूज्य गुरुदेव की स्मृति से जुड़ा रहेगा।

इस युग में जन्मे वे सभी मानव भाग्यशाली हैं जो पूज्य गुरुदेव के सीधे संपर्क में आये अथवा जिन्होंने शिविरों में भाग लेकर उनकी परंपरा में सिखाई गई साधना विधि से लाभान्वित हुए। ऐसा युगपुरुष, महायोगी, अनेकों का मंगलमित्र, कर्मयोगी, प्रज्ञावान, धर्मनिष्ठ हमारे लिए ही जन्मा और हमें सन्मार्ग दिखाने के लिए ही जिया। हम सब उनके प्रति कृतज्ञतापूर्वक नतमस्तक हैं। आओ, संकल्प लें कि जीवन भर सद्धर्म के पथ पर चलेंगे, लोक कल्याण में यथाशक्ति योगदान देंगे और उनके शेष कार्य को पूरा करने में सहयोगी बनेंगे। यही उनके प्रति हमारी उपयुक्त सही श्रद्धांजलि है।

वे महामानव थे, करुणा सागर थे, कल्याणमित्र थे। हम सब विपश्यी साधक-साधिकाएं उनको शत-शत वंदन करते हैं, उनकी स्वस्ति मुक्ति की धर्मकामना करते हैं। नि:संदेह वे भवमुक्त होंगे। यद्यपि वे अब नहीं हैं पर उनकी परंपरा को परिशुद्ध रखा जायगा। विश्वव्यापी विपश्यना सुव्यवस्थित रूप से दीर्घकाल तक लोक कल्याण करे, इस उद्देश्य से उन्होंने अनुभवी विपश्यना आचार्यों को पहिले ही क्षेत्राधिकार आवंटित कर जिम्मेदारी सौंप दी थी। आशा की जा सकती है कि विपश्यना भविष्य में भी परिशुद्ध रूप से सुरक्षित रखी जायगी और मानव कल्याण करती रहेगी।

मरण से भयं नत्थि, निकन्ति नत्थि जीविते।
सन्देहं निक्खिपिस्सामि सम्पजानो परिस्सतो।।

न मुझे मरने का भय है, न जीने की कामना। मैं इस देह को स्मृति और संप्रज्ञान के साथ त्याग दूंगा। ●

नमन करुं गुरुदेव को, कैसे संत सुजान।
कितने करुणा चित्त से, दिया धरम का दान।।

गुरुवर! तेरे चरण की, धूल लगे मम शीश।
सदा धरम में रत रहूं, मिले यही आशीष।।

आज नमन का दिवस है, अंतर भरी उमंग।
श्रद्धा और कृतज्ञता, विमल भक्ति का रंग।।

गुरुवर! तुम मिलते नहीं, धरम गंग के तीर।
तो बस गंगा पूजता, कभी न पीता नीर।।

पथ भूला दिगभ्रम हुआ, भटक रहा अकुलाय।
धन्य! धन्य! गुरुदेव ने, सत्पथ दिया दिखाय।।

बोधिसत्व गुरुदेव ने, पकड़ी मेरी बांह।
मुक्ति विधायक पथ दिया, बोधिवृक्ष की छांह।।